अध्याय

18

श्रम-विभाजन और जाति-प्रथा, मेरी कल्पना का आदर्श समाज

डॉ भीमराव अंबेडकर

© NCERT not to be republished

जीवन-परिचय

मानव-मुक्ति के पुरोधा बाबा साहब भीमराव आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 ई० को मध्य प्रदेश के महू नामक स्थान पर हुआ था।

इनके पिता का नाम श्रीराम जी तथा माता का नाम भीमाबाई था।

1907 ई० में हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद इनका विवाह रमाबाई के साथ हुआ।

प्राथमिक शिक्षा के बाद बड़ौदा नरेश के प्रोत्साहन पर उच्चतर शिक्षा के लिए न्यूयार्क और फिर वहाँ से लंदन गए।

हिंदू पंथ में व्याप्त कुरूतियों और छुआछूत की प्रथा से तंग आकार सन 1956 में उन्होंने बौद्ध धर्म अपना लिया था।

सम्मान - सन 1990 में, उन्हें भारत रत्न, भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान से मरणोपरांत सम्मानित किया गया था।

इन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की।

1923 ई० में इन्होंने मुंबई के उच्च न्यायालय में वकालत शुरू की।

1924 ई० में इन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की।

ये संविधान की प्रारूप समिति के सदस्य थे।

निधन - 6 दिसंबर, 1956 ई० में दिल्ली में इनका देहावसान हो गया।

रचनाएँ :—

पुस्तकें व भाषण —

दे कास्ट्स इन इंडिया, देयर मेकेनिज़्म, जेनेसिस एंड डेवलपमेंट (1917),

द अनटचेबल्स, हू आर दे? (1948),

हू आर द शूद्राज (1946),

बुद्धा एंड हिज धम्मा (1957),

थॉट्स ऑन लिंग्युस्टिक स्ट्रेटेस (1955),

द प्रॉब्लम ऑफ़ द रूपी (1923),

द एबोल्यूशन ऑफ़ प्रोविंशियल फायनांस इन ब्रिटिश इंडिया (1916),

द राइज एंड फ़ॉल ऑफ़ द हिंदू वीमैन (1965),

एनीहिलेशन ऑफ़ कास्ट (1936),

लेबर एंड पार्लियामेंट्री डैमोक्रेसी (1943),

बुद्धज्म एंड कम्युनिज़्म (1956)।

पत्रिका-संपादन — मूक नायक, बहिष्कृत भारत, जनता।

साहित्यिक विशेषताएँ —

- बाबा साहब आधुनिक भारतीय चिंतकों में से एक थे।
- इन्होंने संस्कृत के धार्मिक, पौराणिक और वैदिक साहित्य का अध्ययन किया तथा ऐतिहासिक-सामाजिक क्षेत्र में अनेक मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत कीं।

© JCERT not to be republished

- ये इतिहास-मीमांसक, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, शिक्षाविद् तथा धर्म-दर्शन के व्याख्याता बनकर उभरे।
- स्वदेश में कुछ समय इन्होंने वकालत भी की।
- इन्होंने अछूतों, स्त्रियों व मजदूरों को मानवीय अधिकार व सम्मान दिलाने के लिए अथक संघर्ष किया।
- डॉ० भीमराव आंबेडकर भारत संविधान के निर्माताओं में से एक हैं।
- उन्होंने जीवनभर दलितों की मुक्ति व सामाजिक समता के लिए संघर्ष किया।
- उनका पूरा लेखन इसी संघर्ष व सरोकार से जुड़ा हुआ है।
- स्वयं डॉ० आंबेडकर को बचपन से ही जाति आधारित उत्पीड़न, शोषण व अपमान से गुजरना पड़ा था।
- व्यापक अध्ययन एवं चिंतन-मनन के बल पर इन्होंने हिंदुस्तान के स्वाधीनता संग्राम में एक नई अंतर्वस्तु प्रस्तुत करने का काम किया।
- इनका मानना था कि दासता का सबसे व्यापक व गहन रूप सामाजिक दासता है और उसके उन्मूलन के बिना कोई भी स्वतंत्रता कुछ लोगों का विशेषाधिकार रहेगी, इसलिए अधूरी होगी।

श्रम-विभाजन और जाति-प्रथा

प्रतिपादय- यह पाठ आंबेडकर के विख्यात भाषण 'एनीहिलेशन ऑफ़ कास्ट' (1936) पर आधारित है। इसका अनुवाद ललई सिंह यादव ने 'जाति-भेद का उच्छेद' शीर्षक के अंतर्गत किया। यह भाषण 'जाति-पाँति तोड़क मंडल' (लाहौर) के वार्षिक सम्मेलन (1936) के अध्यक्षीय भाषण के रूप में तैयार किया गया था, परंतु इसकी क्रांतिकारी दृष्टि से आयोजकों की पूर्ण सहमति न बन सकने के कारण सम्मेलन स्थगित हो गया।
सारांश-लेखक कहता है कि आज के युग में भी जातिवाद के पोषकों की कमी नहीं है। समर्थक कहते हैं कि आधुनिक सभ्य समाज कार्य-कुशलता के लिए श्रम-विभाजन को आवश्यक मानता है। इसमें आपत्ति यह है कि जाति-प्रथा श्रम-विभाजन के साथ-साथ श्रमिक विभाजन का भी रूप लिए हुए है।

श्रम-विभाजन सभ्य समाज की आवश्यकता हो सकती है, परंतु यह श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करती। भारत की जाति-प्रथा श्रमिकों के अस्वाभाविक विभाजन के साथ-साथ विभाजित विभिन्न वर्गों को एक-दूसरे की अपेक्षा ऊँच-नीच भी करार देती है। जाति-प्रथा को यदि श्रम-विभाजन मान लिया जाए तो यह भी मानव की रुचि पर आधारित नहीं है। सक्षम समाज को चाहिए कि वह लोगों को अपनी रुचि का पेशा करने के लिए सक्षम बनाए। जाति-प्रथा में यह दोष है कि इसमें मनुष्य का पेशा उसके प्रशिक्षण या उसकी निजी क्षमता के आधार

© JCERT not to be republished

पर न करके उसके माता-पिता के सामाजिक स्तर से किया जाता है। यह मनुष्य को जीवन-भर के लिए एक पेशे में बाँध देती है। ऐसी दशा में उद्योग-धंधों की प्रक्रिया व तकनीक में परिवर्तन से भूखों मरने की नौबत आ जाती है। हिंदू धर्म में पेशा बदलने की अनुमति न होने के कारण कई बार बेरोजगारी की समस्या उभर आती है।

जाति-प्रथा का श्रम-विभाजन मनुष्य की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं रहता। इसमें व्यक्तिगत रुचि व भावना का कोई स्थान नहीं होता। पूर्व लेख ही इसका आधार है। ऐसी स्थिति में लोग काम में अरुचि दिखाते हैं। अत: आर्थिक पहलू से भी जाति-प्रथा हानिकारक है क्योंकि यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रेरणा, रुचि व आत्म-शक्ति को दबाकर उन्हें स्वाभाविक नियमों में जकड़कर निष्क्रिय बना देती है।

मेरी कल्पना का आदर्श समाज

प्रतिपादय-इस पाठ में लेखक ने बताया है कि आदर्श समाज में तीन तत्व अनिवार्यत: होने चाहिए-समानता, स्वतंत्रता व बंधुता। इनसे लोकतंत्र सामूहिक जीवनचर्या की एक रीति तथा समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया के अर्थ तक पहुँच सकता है। सारांश-लेखक का आदर्श समाज स्वतंत्रता, समता व भ्रातृत्त पर आधारित होगा। समाज में इतनी गतिशीलता होनी चाहिए कि कोई भी परिवर्तन समाज में तुरंत प्रसारित हो जाए। ऐसे समाज में सबका सब कार्यों में भाग होना चाहिए तथा सबको सबकी रक्षा के प्रति सजग रहना चाहिए। सबको संपर्क के साधन व अवसर मिलने चाहिए। यही लोकतंत्र है। लोकतंत्र मूलत: सामाजिक जीवनचर्या की एक रीति व समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान का नाम है। आवागमन, जीवन व शारीरिक सुरक्षा की स्वाधीनता, संपत्ति, जीविकोपार्जन के लिए जरूरी औजार व सामग्री रखने के अधिकार की स्वतंत्रता पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होती, परंतु मनुष्य के सक्षम व प्रभावशाली प्रयोग की स्वतंत्रता देने के लिए लोग तैयार नहीं हैं। इसके लिए व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता देनी होती है। इस स्वतंत्रता के अभाव में व्यक्ति 'दासता' में जकड़ा रहेगा।

'दासता' केवल कानूनी नहीं होती। यह वहाँ भी है जहाँ कुछ लोगों को दूसरों द्वारा निर्धारित व्यवहार व कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश होना पड़ता है। फ्रांसीसी क्रांति के नारे में 'समता' शब्द सदैव विवादित रहा है। समता के आलोचक कहते हैं कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते। यह सत्य होते हुए भी महत्व नहीं रखता क्योंकि समता असंभव होते हुए भी नियामक सिद्धांत है। मनुष्य की क्षमता तीन बातों पर निर्भर है —

शारीरिक वंश परंपरा,

सामाजिक उत्तराधिकार,

मनुष्य के अपने प्रयत्न।

इन तीनों दृष्टियों से मनुष्य समान नहीं होते, परंतु क्या इन तीनों कारणों से व्यक्ति से असमान व्यवहार करना चाहिए। असमान प्रयत्न के कारण असमान व्यवहार अनुचित

© JCERT not to be republished

नहीं है, परंतु हर व्यक्ति को विकास करने के अवसर मिलने चाहिए। लेखक का मानना है कि उच्च वर्ग के लोग उत्तम व्यवहार के मुकाबले में निश्चय ही जीतेंगे क्योंकि उत्तम व्यवहार का निर्णय भी संपन्नों को ही करना होगा। प्रयास मनुष्य के वश में है, परंतु वंश व सामाजिक प्रतिष्ठा उसके वश में नहीं है। अत: वंश और सामाजिकता के नाम पर असमानता अनुचित है। एक राजनेता को अनेक लोगों से मिलना होता है। उसके पास हर व्यक्ति के लिए अलग व्यवहार करने का समय नहीं होता। ऐसे में वह व्यवहार्य सिद्धांत का पालन करता है कि सब मनुष्यों के साथ समान व्यवहार किया जाए। वह सबसे व्यवहार इसलिए करता है क्योंकि वर्गीकरण व श्रेणीकरण संभव नहीं है। समता एक काल्पनिक वस्तु है, फिर भी राजनीतिज्ञों के लिए यही एकमात्र उपाय व मार्ग है।

शब्दार्थ

विडंबना — उपहास का विषय।

पोषक — बढ़ाने वाला।

समर्थन — स्वीकार।

आपतिजनक — परेशानी पैदा करने वाली बात। अस्वाभाविक — जो सहज न हो।

करार — समझौता।

दूषित — दोषपूर्ण।

प्रशिक्षण — किसी कार्य के लिए तैयार करना।

निजी — अपनी, व्यक्तिगत।

दृष्टिकोण — विचार का ढंग।

स्तर — श्रेणी, स्थिति।

अनुपयुक्त — उपयुक्त न होना।

अययाति — नाकाफी।

तकनीक — विधि।

प्रतिकूल — विपरीत।

चारा होना — अवसर होना।

पैतृक — पिता से प्राप्त।

पारंगत — पूरी तरह कुशल।

प्रत्यक्ष — आँखों के सामने।

गंभीर — गहरे।

पूर्व लेख — जन्म से पहले भाग्य में लिखा हुआ।

उत्पीड़न — शोषण।

विवशतावश — मजबूरी से।

दुभावना — बुरी नीयत।

निविवाद — बिना विवाद के।

आत्म-शक्ति — अंदर की शक्ति।

खेदजनक — दुखदायक।

नीरस गाथा — उबाऊ बातें।

भ्रातृता — भाईचारा।

वांछित — आवश्यक।

संचारित — फैलाया हुआ।

बहुविधि — अनेक प्रकार।

© JCERT not to be republished

अबाध — बिना किसी रुकावट के।

गमनागमन — आना-जाना।

स्वाधीनता — आजादी।

जीविकोपार्जन — रोजगार जुटाना।

आलोचक — निंदक, तर्कयुक्त समीक्षक।

वज़न रखना — महत्वपूर्ण होना।

तथ्य —वास्तविक।

नियामक — दिशा देने वाले।

उत्तराधिकार — पूर्वजों या पिता से मिलने वाला अधिकार। नानाजन — ज्ञान प्राप्त करना।

विशिष्टता — अलग पहचान।

सर्वथा — सब तरह से।

बाजी मार लेना — जीत हासिल करना ।

उत्तम — श्रेष्ठ।

कुल — परिवार।

ख्याति — प्रसिद्ध।

प्रतिष्ठा — सम्मान।

निष्यक्ष — भेदभाव रहित।

तकाज़ा —आवश्यकता।

नितांत — बिलकुल।

औचित्य — उचित होना।

याला पड़ना — संपर्क होना।

व्यवहार्य — जो व्यावहारिक हो ।

कसीटी — जाँच का आधार।

प्रश्न-अभ्यास

प्रश्न 1. जाति प्रथा को श्रम-विभाजन का ही एक रूप न मानने के पीछे आंबेडकर के क्या तर्क हैं?

उत्तर - आंबेडकर जी ने जाति प्रथा को श्रम-विभाजन का ही एक रूप न मानने के पीछे ये तर्क दिए हैं-

(क) जाति प्रथा श्रम का ही विभाजन नहीं करती बल्कि यह श्रमिक को भी बाँट देती है। आंबेडकर जी के अनुसार एक सभ्य समाज में इस प्रकार का विभाजन सही नहीं है। इसे मान्य नहीं कहा जा सकता।

(ख) जाति प्रथा में श्रम का जो विभाजन किया गया है, वह व्यक्ति की रुचि को ध्यान में रखकर नहीं किया गया है। उनके अनुसार जाति प्रथा में यह गलत सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है कि किसी अन्य व्यक्ति की रुचि, योग्तयता तथा क्षमता को अनदेखा कर उसके लिए जीविका के साधन को किसी और व्यक्ति द्वारा निर्धारित करना।

(ग) जाति प्रथा में पेशे का निर्धारण एक मनुष्य को जीवनभर के लिए दे दिया जाता है। फिर चाहे वह पेशा मनुष्य की व्यक्तिगत ज़रूरत

© JCERT not to be republished

पूरी न करता हो। इसका परिणाम यह होता है कि उस मनुष्य को घोर गरीबी का सामना भी करना पड़ सकता है।

प्रश्न 2. जाति प्रथा भारतीय समाज में बेरोजगारी व भुखमरी का भी एक कारण कैसे बनती रही है? क्या यह स्थिति आज भी है?

जाति प्रथा में प्रत्येक समुदाय या वर्ग के लिए अलग-अलग कार्य तथा पेशे का निर्धारण किया गया है। जैसे ब्राह्मण जाति के लोग पूजा-पाठ करते हैं। हर वर्ग के लिए पूजा पाठ कराने का अधिकार और पेशा इन्हीं का है। क्षत्रिय जाति के लोगों को युद्ध करने का अधिकार था। अतः उनके लिए सेना में नौकरियाँ निश्चित थीं। ऐसे ही वैश्य लोग व्यापार करते थे। निम्नवर्ग में लुहार, सुनार, चर्मकार, बढ़ई, धुनई, कसाई, कुम्हार इत्यादि कार्य निश्चित किए गए थे। इन वर्ग के लोगों को केवल यही कार्य करने की अनुमति थी। इन्हीं के कामों के आधार पर इनकी जाति का निर्धारण होता था। इन्हें अन्य कार्य की अनुमति नहीं थी। अतः कुछ पेशों में हर समय धन की प्राप्ति नहीं होती थी। इससे उनका गुज़ारा चलना कठिन हो जाता था। मौसम या ज़रूरत के आधार पर इन्हें कमाई होती थी। वरना अन्य समय ये बेरोजगार होते थे। इस तरह हर समय काम उपलब्ध न होने के कारण इन्हें भुखमरी का सामना करना पड़ता था। समाज द्वारा यही दबाव पड़ता था कि एक बढ़ई का बेटा बढ़ई ही बने। उसे सुनार या लुहार बनने का अधिकार नहीं। आज के समय में बहुत बदलाव आया है। आज लोग जाति के आधार पर नहीं अपनी योग्यता, क्षमता और शिक्षा के आधार पर पेशा चुनते हैं। शिक्षा ने लोगों की सोच और समाज में महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं।

प्रश्न 3.लेखक के मत से दासता' की व्यापक परिभाषा क्या है?

उत्तर:

लेखक के मत से 'दासता' से अभिप्राय केवल कानूनी पराधीनता नहीं है। दासता की व्यापक परिभाषा है-किसी व्यक्ति को अपना व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता न देना। इसका सीधा अर्थ है-उसे दासता में जकड़कर रखना। इसमें कुछ व्यक्तियों को दूसरे लोगों द्वारा निर्धारित व्यवहार व कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश होना पड़ता है।

प्रश्न 4. शारीरिक वंश-परंपरा और सामाजिक उत्तराधिकार की दृष्टि से मनुष्यों में असमानता संभावित रहने के बावजूद आंबेडकर समता' को एक व्यवहार्य सिद्धांत मानने का आग्रह क्यों करते हैं? इसके पीछे उनके क्या तर्क हैं?

उत्तर: शारीरिक वंश परंपरा और सामाजिक उत्तराधिकार की दृष्टि से मनुष्यों में असमानता संभावित रहने के बावजूद आंबेडकर समता को एक व्यवहार्य सिद्धांत मानने का आग्रह इसलिए करते हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता का विकास करने के लिए समान अवसर मिलने चाहिए। वे शारीरिक वंश परंपरा व सामाजिक उत्तराधिकार के आधार पर असमान व्यवहार को अनुचित मानते हैं। उनका मानना है कि समाज को यदि अपने सदस्यों से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करनी है। तो उसे समाज के सदस्यों को

© JCERT not to be republished

आरंभ से ही समान अवसर व समान व्यवहार उपलब्ध करवाने चाहिए। राजनीतिज्ञों को भी सबके साथ समान व्यवहार करना चाहिए। समान व्यवहार और स्वतंत्रता को सिद्धांत ही समता का प्रतिरूप है। सामाजिक उत्थान के लिए समता का होना अनिवार्य हैं।

प्रश्न 5. सही में आंबेडकर ने भावनात्मक समत्व की मानवीय दृष्टि के तहत जातिवाद का उन्मूलन चाहा है, जिसकी प्रतिष्ठा के लिए भौतिक स्थितियों और जीवन-सुविधाओं का तर्क दिया है। क्या इससे आप सहमत हैं?

उत्तर: हम लेखक की बात से सहमत हैं। उन्होंने भावनात्मक समत्व की मानवीय दृष्टि के तहत जातिवाद का उन्मूलन चाहा है जिसकी प्रतिष्ठा के लिए भौतिक स्थितियों और जीवन-सुविधाओं का तर्क दिया है। भावनात्मक समत्व तभी आ सकता है जब समान भौतिक स्थितियाँ व जीवन-सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। समाज में जाति-प्रथा का उन्मूलन समता का भाव होने से ही हो सकता है। मनुष्य की महानता उसके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप होनी चाहिए। मनुष्य के प्रयासों का मूल्यांकन भी तभी हो सकता है जब सभी को समान अवसर मिले। शहर में कान्वेंट स्कूल व सरकारी स्कूल के विद्यार्थियों के बीच स्पर्धा में कान्वेंट स्कूल का विद्यार्थी ही जीतेगा क्योंकि उसे अच्छी सुविधाएँ मिली हैं। अत: जातिवाद का उन्मूलन करने के बाद हर व्यक्ति को समान भौतिक सुविधाएँ मिलें तो उनका विकास हो सकता है, अन्यथा नहीं।

प्रश्न 6. आदर्श समाज के तीन तत्त्वों में से एक 'भ्रातृता' को रखकर लेखक ने अपने आदर्श समाज में स्त्रियों को भी सम्मिलित किया है अथवा नहीं? आप इस 'भ्रातृता' शब्द से कहाँ तक सहमत हैं? यदि नहीं तो आप क्या शब्द उचित समझेंगे/समझेंगी?

उत्तर - लेखक ने स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृता को आदर्श समाज के आवश्यक तत्व बताएँ हैं। लेखक ने इस लेख में अपने आदर्श समाज में स्त्रियों को सम्मिलित नहीं किया है। हम 'भ्रातृता' शब्द से सहमत नहीं है। यहाँ पर बात मात्र जाति प्रथा की हो रही है। समाज में स्त्रियों की बात नहीं की गई है। स्त्री फिर किसी भी वर्ग की क्यों नो हो, उसे लिंग के आधार पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है। पूरे लेख में लेखक ने जाति प्रथा पर निशाना साधा है। यहाँ पर स्त्रियों की बात ही नहीं की गई है। हम इसके लिए दूसरा नाम बंधुत्व रखेंगे।

© JCERT not to be republished